अध्ययन सामग्री

एम॰ ए॰ सेम - II & III,

विषय - हिन्दी

शीर्षक: रस सम्प्रदाय

डॉ॰ बजरंग प्रताप केसरी
पदनाम - प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
एच॰ डी॰ जैन कॉलेज, आरा

खण्डित हो जाती है।

रस सम्प्रदाय!— इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि हैं। उन्होंने नाटक को काव्य का पर्याय मानते हुए रस को काव्य की आत्मा कहा है। उनके अनुसार रस से रहित कोई भी उक्ति काव्यमय नहीं हो सकती। आगे चलकर मम्मट, विश्वनाथ, राजशेखर आदि आचार्यों ने भी रस को ही काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य भरत ने रस की परिभाषा एक सूत्र में दी थी- "विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।" इसकी अनेक व्याख्यायें हुई हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य से प्राप्त होने वाली अखंड अलौकिक तथा आनन्दात्मक अनुभूति ही रस है। रसवादी आचार्यों की दृष्टि में यही काव्य का साध्य है- उसकी आत्मा है। आधुनिक युग के महान आलोचक आचार्य शुक्ल ने काव्य में रस के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। शुक्ल जी का यह मत अत्यन्त

प्रबल है और वे रस को काव्यत्व के लिये सर्वाधिक आवश्यक तत्व मानते हैं।

अब समस्या यह है कि उपर्युक्त छः काव्य-तत्वों में काव्य की आत्मा के पद पर किसे प्रतिष्ठित किया जाये। काव्य के प्रसंग में आत्मा शब्द का अर्थ है - काव्य का अनिवार्य तत्व - जो बाह्य न होकर आन्तरिक हो। उक्त विवेचित छः तत्वों में चार तत्व - अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा औचित्य अधिकांशतः बाह्य पक्ष के तत्व ही है। औचित्य सर्वत्र एवं सभी शास्त्रों में ग्राह्य होता है। अतः वह काव्य का व्यावर्तक धर्म नहीं हो सकता। अलंकार एवं आभूषण को शरीर रूपता ही प्राप्त नहीं, फिर आत्मा रूपता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। रीति भी शैली ही है जो लेखन पद्धति के लिए महत्वपूर्ण है। यह काव्य के शरीर का ही निर्माण करती है अतः काव्य की आत्मा नहीं हो सकती। वक्रोक्ति भी अलंकार की एक विशेषता होने के कारण काव्य की आत्मा के पद पर आसीन नहीं हो सकती। आजकल वक्रोक्ति का एक अलंकार विशेष के रूप में भी प्रयोग होने लगा है और इस शब्द से उस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है अतः यह काव्य की आत्मा का पद नहीं ले सकती।

अब विवाद केवल दो तत्वों - ध्वनि और रस में ही रह जाता है। सभी काव्य-तत्वों में रस को सर्वाधिक समादर प्राप्त हुआ है तथा इसे काव्य की आत्मा भी घोषित किया जा चुका है। इस प्रकार यह समस्त काव्य तत्वों में सर्वाधिक

प्रतिष्ठित एवं काव्य का एकमात्र फल है; किन्तु इसे आत्मा पद पर आसीन न करने का कारण यह है कि ध्वनि के साथ इसकी तुलना में ध्वनि का पलड़ा भारी पड़ता है। इसीलिये ध्वनि को ही काव्य की आत्मा के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस स्वीकृति के निम्नांकित आधार हैं—

(i) ध्वनि तत्व काव्य में अनिवार्यतः विद्यमान रहता है। यहाँ तक कि रस के उदाहरण में भी इस तत्व का अस्तित्व अनिवार्यतः अपेक्षित है, किन्तु इसके विपरीत सूक्ति, जिन्हें काव्य की कोटि में रखा जाता है, में आवश्यक नहीं कि रस की स्थिति हो।

(ii) ध्वनि तत्व रस की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इसके तारतम्य के लिये काव्य को - ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य तथा चित्र तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। रस तो ध्वनि काव्य का एक भेद मात्र है। ध्वनि भेद सर्वोत्कृष्ट है।

(iii) रस काव्य का फल है अतः इसे आत्मा कहना उचित नहीं। फल पककर पेड़ से गिर जाता है किन्तु पेड़ जीवित रहता है

निष्कर्षतः ध्वनि ही काव्य का अनिवार्य, आन्तरिक एवं साधनभूत तत्व है। अतः इसे ही काव्य की आत्मा के पद पर प्रतिष्ठित किया जाना चाहिये।

संतान को मनुष्य का आत्मज कहते हैं किन्तु वह आत्मा नहीं होती। उसी प्रकार रस काव्य का फल आत्मज है आत्मा नहीं। आत्मा तो ध्वनि ही है। पेड़ का फल खाकर हम तृप्त होते हैं। आनंदित होते हैं किन्तु वह पेड़ की आत्मा नहीं होता। उसी प्रकार रस से हमें आनंद मिलता है किन्तु वह काव्य की आत्मा नहीं हो सकता।